''चाक'' उपन्यास में स्त्री विमर्श का अंकन

*डॉ. संगीता सक्सेना

हजार वर्षों के इतिहास पर यदि गौर करें तो दिखाई देता है कि स्त्री की स्थिति 'अन्या' और नियति 'भोग्या' है । मतलब यह है कि स्त्री एक स्वायत्त व्यक्ति नहीं है, यह मान्यता बन गई और स्थापित भी हो गई। हमेशा से ही स्त्री को पुरूष के संदर्भ में परिभाषित और व्याख्यायित किया जाता रहा और उसकी अपनी विभेदक स्थितियां हैं, जो उसके स्वायत्त व्यक्तित्व को निर्मित करती हैं यह तथ्य लगातार नजरअंदाज किया जाता रहा।

स्त्री–विमर्श का आशय–स्त्री–विमर्श के अंतर्गत मानव विकास के इतिहास में स्त्री की स्थिति, नियति और मुक्ति की बात की जाती है। इसमें पुरुष–द्रोह नहीं है, जैसा कि इसके विरोधी प्रचारित करते हैं । स्त्री अपनी जैविक संरचना और मानसिक गुणों से पुरूष से विभेदक इकाई है लेकिन उससे कमतर नहीं हैं । मनुष्य की परंपरा को सुरक्षित रखने में स्त्री की केन्द्रीय भूमिका होने के बावजूद पुरूष आज भी समाज के केन्द्र में है और स्त्री की यह 'अन्या' स्थिति व गौण नियति की परंपरा आज तक यथावत् ही है । शरतचंद्र ने 1930 में एक लेख लिखा था –'नारी का मूल्य'। उसमें वे कहते है। 'समाज का अर्थ है पुरूष, उसका अर्थ नारी नहीं है ।' उनका यह कथन अरस्तु के इस कथन को पुष्ट करता है कि औरत कमियों के कारण ही एक स्त्री बनती है और पुरूष पूर्ण है ।

स्त्री–विमर्श की पृष्ठभूमि –स्त्री–विमर्श एक दर्शन के रूप में बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में चर्चित हुआ है । इस अवधारणा को स्थापित करने में विदेशी चिंतकों का योगदान अधिक रहा हे । इसी बात को लेकर नारी–मुक्ति के विरोधी आरोप लगाते हैं कि यह भारतीय भूमि पर आयातित दर्शन है तथा पुरूष–द्रोह का समर्थन करता है । इस विषय पर मृणाल पांडे की टिप्पणी है, 'सामाजिक भेदभाव, विषमता, कुरीतियों, प्रतिगामी कठमुल्लेपन और भ्रष्टाचार का लगातार मुखर विरोध करने की विवेकशील दृष्टि विकसित करने की सामर्थ्य जिस दर्शन में है, उसे अंगीकार न करना, नए की अनिवार्यता को स्वदेशी के नाम पर टालना, दुरदुराना उचित नहीं है ।.........नारीवाद पुरूषों का नहीं, उनकी मानवीयता घटाने वाले छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा और कुछ नहीं है ।'1 हिन्दी लेखन के संदर्भ में इस चिंतन का पहला रूप हमें महादेवी वर्मा के निबंधों में मिलता है । समकालीन हिंदी लेखकों में कात्यायनी, अनामिका, मृणाल पांडे, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री और मैत्रेयी पुष्पा ने इस चिंतन को अपने लेखों एवं कथाओं के माध्यम से उठाया है ।

'चाक' और मैत्रेयी पुष्पा –नारी–विमर्श और नारी–मुक्ति की शब्दावली की ओट में छोटे–से संपन्न वर्ग की स्त्रियों की स्वतंत्रता और भोक्ता–वृत्ति को पूरे देश की स्त्रियों के लिए एक आदर्श अभिकल्प के रूप में उपन्यासों में चित्रित करने के उलट मैत्रेयी के साहित्य में पिछडी जातियों का स्त्री–संसार है जो अपने वास्तविक जीवन में दिन–रात गृहस्थी के चक्र में पिसकर अनवरत् शारीरिक और मानसिक शोषण के मध्य अपनी अस्मिता को और अपनी नियति से जूझते हुए उन कारणों को पहचान रही है जो उसे 'अन्या' बनाये रखते हैं, स्वायत्त होने से रोकते हैं । चाहे वह इदन्नमम की मंदा हो, अगनपाखी की भुवन हो, कहे ईसूरी फाग की रजउ हो'।

'चाक' उपन्यास का विश्लेषण – कथ्य

कथ्य की दृष्टि से इस उपन्यास का कथा–विन्यास पश्चिमी उत्तरप्रदेश के अतरपुर गांव के परिवेश से जुड़ा है, जहां की औरतें, अधिकांश अनपढ़ है और जो पढ़ी–लिखी हैं, वे भी 'गोबर–पानी' के काम में खपकर अपनी 'विद्या' भूल चुकी हैं । इन्हीं में से एक है – सारंग, सारंग नैनी । कथा के प्रारंभ में ही एक स्तब्ध कर देने वाली घटना घटती है । सारंग की फुफेरी बहन रेशम का पति करमवीर विषैली शराब पीकर मर जाता है । उसकी सास जेठ डोरिया को पति रूप में स्वीकारने के लिए आग्रह करती हैं, परंतु रेशम यह प्रस्ताव ठुकरा देती है । पर–पुरूष से प्रेम–संबंध के चलते वह गर्भवती हो जाती है । अपनी इस स्थिति को वह सहज रूप में स्वीकारती है – 'पेड़ हरा–भरा रहे, तो फल–फूल क्यों नहीं लगेंगे ? क्या ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और बल्लरी न फूले?'2 उसकी सास गर्भपात के लिए कहती है लेकिन सास की इस रूढ़ मानसिकता पर प्रहार करती रेशम अपने मातृत्व के निर्णय पर अडिग रहती है।3 मर्दों की बिरादरी में मर्दों से न डरते हुए एक औरत का दुस्साहस भरा निर्णय मर्यादा तोड़ने के अपराध रूप में लिया जाता है और रेशम को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है । एक दिन रेशम गोबर–कंडों की कोठरी में जाती है और वह सारी कोठरी उस पर ढह जाती है । उसकी मृत्यु हो जाती है जिसकी पृष्ठभूमि में ही है पुरूष–सत्ता व उस पर केंद्रित

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहगढ़

सामाजिक व्यवस्था । सारे गांव का सुस्त–धीमा माहौल एक गर्भवती स्त्री की ऐसी नियति पर चौंक पड़ता है। औरतें फिर से पुरानी बातें दोहराने लगती हैं'–रस्सी के फंदे से झूलती रूक्मिणी, कुंए में कूदने वाली रामदेई, करबन नदी में कूदने वाले नारायणी – और अब इनमें रेशम का नाम भी जुड़ जाता है । इस करूण प्रसंग में मैत्रेयी लोक कथाओं तथा लोकगीतों का सहारा लेती हैं जो बैक ग्राउंड संगीत की तरह एक और कथा को गतिशीत करते हैं, साथ ही कथा के निहितार्थों को खोलते हैं। 'चंदना' की कथा–प्रेम की स्वाधीनता के लिए, 'राजा पिरथम और रानी मंझा' की गीत–कथा राजा के दंभ और स्वार्थ के मध्य रानी के साहस और संतान पर स्त्री के अधिकार के लिए और 'रानी तथा बागन के मोरिला' की कथा प्रेम में ऐश्वर्य त्याग के लिए कथा प्रवाह में आर्द्रता और करूणा की सृष्टि करती हैं।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के आठवें–नवें दशक में विकास शिक्षा, प्रगति और परिवर्तन जैसे मानवीय सरोकारों की दुहाई देने वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था मे स्त्री से जिंदा रहने का मौलिक अधिकार छीन लिया जाता है, लेकिन गांव चुप है, गांव की औरते चुप हैं ।' किसी ने 'भाग' की तो किसी ने 'करम' की दुहाई दी है–'आज तुम्हारी गाई हुई गीत कड़ियों की स्वर तरंग भयानक बवंडर की तरह चपेट रही हैं मुझे .... दादी मुझे चंदना से रेशम तक की कहानी मालूम हैं बस करो दादी ....दादी, तुम भी चंदना वाला गीत गाना छोड़ दो । या उस गीत का अंत ....।'4 'बदल डालो' के इस अनकहे वाक्यांश को मन में रख सारंग अपने पति को प्रेरित करती है कि इस मानव–हत्या को वह अदालत तक ले जाये और न्याय प्राप्त करें । रेशम के वध–प्रसंग में कानून' पुलिस और व्यवस्था की पर्तें उघाडते हुए मैत्रेयी उस बर्बर सत्य को सामने लाती हैं जहां 'कानून–कायदें पैसा देकर कागज के उपर पोंछ देने वाली इबारत के सिवा कुछ नहीं और औरत के हक में तो बिल्कुल नहीं।'5 लेकिन रंजीत उसे समझाता है कि इन सबसे कुछ नहीं होगा। यहीं से सारंग अपने व्यतीत का पुनराख्यान करती है आर्य समाजियों के गुरूकुल कन्या विद्यालय के छात्रावास में रहकर सारंग ने ग्यारहवीं कक्षा उत्तीर्ण की । गुरूकुल के वातावरण में रोज–रोज घटने वाले यौन–संबंधी हादसे उसकी स्मृतियों में पुनर्जीवित होते हैं । कैशोर्य की उन स्मृतियों में भी सारंग के मन में एक बात साफ हो चुकी है कि ऐसे संबंधों का जब पर्दाफाश होता है तब दंड का भागी केवल स्त्री ही होती है । प्रतिकार व विद्रोह करते हुए सारंग भी गुरूकुल में प्रताड़ना सहती है । वर्तमान में रेशम की हत्या के बहाने वह आत्म–विश्लेषण भी करती है । उसका विवाह रंजीत के साथ होता है । 'अच्छी गृहिणी' के प्रशंसा–सरोवर में डुबकी लगाते हुए वह चंदन की मॉं भी हो गई और पढ़े–लिखे को भूल गई –'अपने आपको सब तरह से बदल डाला मैंने । कोई कह सकता है कि कभी यज्ञ किया होगा मैंने ? मंत्र–श्लोक वाले होंगे ? सत्यार्थ प्रकाश रटा होगा ? आभिज्ञान शाकुंतलम् और कुमार–संभव पढ़े होंगे ? यह घूंघट वाली औरत रंजीत की बहू है, सारंग नहीं ।'6 सारंग के बार–बार आग्रह करने पर रंजीत शहर में जाकर अदालत में मुकदमा दायर करता है और इसके साथ ही यहां कथ्य में गांव तथा शहर के इंटरेक्शन के सूत्र गूंथ जाते हैं ।' मैत्रेयी की दृष्टि अब रेशम और सारंग तक ही सीमित नहीं है बल्कि गांवों में व्याप्त विकृति और शहरी दुर्गंध को व्यक्त करने लगती है। शहर से थानेदार आता है और गांव में दो गुट बन जाते हैं' पहले गुट में गांव का प्रधान फत्तेसिंह, रेशम के हत्यारे डोरिया का बड़ा भाई मास्टर थान सिंह, साहूकार भवानीदास, नाई हरप्रसाद है तथा कुंवरपाल, तो प्रतिपक्षी गुट में है –रंजीत, बाबा गजाधर सिंह, नंबरदार, भंवर, रिसाल और झज्जू । अदालती दांव–पेंच शुरू होते हैं।' गांव का माहौल भयावह होता जाता है और सुरक्षा की दृष्टि से सारंग को अपने दस वर्षीय पुत्र चंदन को शहर भेजने का निर्णय लेना पड़ता है । अपने इकलौते पुत्र के बिछोह में व्याकुल सारंग का भय और दुश्चिंता मर्मस्पर्शी है।

गांव में पंचायत के चुनाव होने वाले हैं ओर गांव का प्रधान ग्राम–विकास के लिए आने वाली राशि को फर्जी वाड़े में दिखाकर हड़पना चाहता है। इसके पीछे उसका उद्देश्य है कि पहले वह ग्राम–पंचायत पर काबिज हो सके और शहर में बैठे सरकारी तंत्र द्वारा प्रतिष्ठित होकर भ्रष्टाचार का खुला खेल गांव में खेल सके। स्वतंत्र भारत में जिस पूंजीवादी विकास नीति को प्रश्रय दिया गया उससे गांवों में किस प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हुई और ग्राम पंचायत जैसी व्यवस्था किस प्रकार प्रगति विरोधी और जड़ी भूत शक्तियों का प्रपंच/मोहरा बन रह गई, लेखिका ने कथ्य में इस बिन्दु की गहन पड़ताल की है । गांव में बढ़ती इस नकारात्मक वृत्ति और विसंगतियों के बीच 'ताजा हवा के झोंके की तरह स्कूल का नया मास्टर श्रीधर आता है और सारंग उसकी ओर खिंचती चली जाती है। ठीक इसी समय रेशम के वध के प्रति पति रंजीत की उदासीनता और प्रधान के पद की लालसा को देखकर सारंग के मन में विकर्षण प्रारंभ होता है । आकर्षण और विकर्षण के द्वंद्व में फंसी सारंग की विकलता लेखिका ने सशक्त रूप में चित्रित की है। उपन्यास के प्रारंभ में मैत्रेयी ने कवयित्री ज्वॉय हार्जी की पंक्तियां उद्धृत की हैं– 'मैं मुक्त करती हूं तुम्हें/मेरे सुंदर भीषण भय/मैं मुक्त करती हूं तुम्हें तुम थे/मेरे प्रिय और घृणित जुड़वॉं/पर अब नहीं पहचानती तुम्हें, जैसे कि/खुद को'

इस भय और आतंक से मुक्त होते ही स्त्री–चेतना अपनी स्वायत्तता और अधिकार सजगता को पहचानने लगती है। यह पहचान स्त्री को खुद को फिर से एक बार साफ–साफ देखने में मदद करती है। सारंग भी खुद को नये रूप में पहचानती है और उसके शांत जीवन में हलचल होने लगती है–अपने ही अंदर छिपी पोगापंथी नारी से मुक्ति की हलचल, पुरूष–सत्ता द्वारा प्राप्त सुविधाओं के प्रति मोह और रास्ते के जोखिम से उपजे भय की हलचल। सारंग के अंतर्जगत की खुलती इन पर्तों को लेखिका ने कोमलता से चित्रित किया है जैसे कोई चित्रकार हल्के–हल्के–स्ट्रोक्स से कैनवस पर अपने प्रिय चित्र में रंग भरता है। पंचायत चुनाव जीतने के लिए प्रधान फत्ते सिंह

स्कूल बिल्डिंग बनाने की फर्जी योजना में श्रीधर को बहला–फुसला कर शामिल करने की कोशिश करते हैं । धौंस–धपट्‌टा भी देते हैं और अंत में उस पर जानलेवा हमला भी करवाते हैं । रंजीत को भी इस कुकृत्य में शामिल जानकर सारंग की आस्था एकदम बिखर जाती है और वह एक ओर आहत श्रीधर के प्रति समर्पण करती है और दूसरी ओर गांव के प्रधान हेतु नामांकन का पर्चा भर देती है। रंजीत उसे मारता–पीटता है पर सारंग अब उस भय, आतंक और दहशत से मुक्त हो चुकी है वह अविचलित रहती है और उसका चुनाव अभियान बिना किसी प्रचार साधन के आगे बढ़ता जा रहा है। उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि फत्तेसिंह, थान सिंह, कुंवरपाल, सुलेमान सिंह, गिरीश त्यागी और थानेदार पंचायत चुनाव में सारंग की जीत आशंका से ग्रस्त होकर बूथ–कैप्चरिंग की योजना बनाते हैं। रात में शराब–पार्टी होती है, जिसमें रंजीत भी शामिल है। ये सारे मिलकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और सारंग के संदर्भ में पेटीकोट गवर्मेंट का व्यंग्य करते हैं। एक हद तक रंजीत सहता है और फिर कुंवरपाल की छाती पर लात मारते हुए उस मस्त महफिल को युद्ध के घमासान में बदल देता है । सारे नशे में धुत्त, औंधे हो जाते हैं और रंजीत भागकर अपने घर आता है और किवाड़ों पर सिर टेक देता है। यह मुद्रा उसकी हार की मुद्रा है जिसे वह किसी से' भी 'शेयर' कर पाने में असमर्थ है।

चरित्र.चरित्र के स्तर पर डॉ. रेखा अवस्थी का मत है, 'उपन्यास का पहला पाठ समाप्त करते ही इम्प्रेशन यही पड़ता है कि 'चाक' स्त्री पात्रों का एक सजीव संग्रहालय है। यह एक ऐसा आख्यान है जिसमें टाइप स्त्री पात्रों की आवृत्ति न होकर विशिष्ट किस्म के नारी पात्रों की विविधता है और अलग–अलग प्रकार के सामाजिक प्रसंगों में उनकी भूमिकाएं भी अलग–अलग किस्म की हैं । अर्थात् चरित्र निर्माण में बहुरंगी वैविध्य के कारण यह उपन्यास बार–बार नये सिरे से गंभीर विवेचन की चुनौती पेश करता है ।'7 सारंग इस उपन्यास का मुख्य चरित्र है बल्कि वह नायक है। एक घूंघट वाली रंजीत की बहू से, आहत श्रीधर के प्रति समर्पित होने वाली प्रेयसी की मुद्रा तक और फिर चुनाव में नामांकन का पर्चा भरकर पिटती लेकिन अविचलित रहती सारंग अपने ही परिवेश से ऊर्जा पाती है । चट्‌टानों से टकरा–टकरा कर पानी की तरह रास्ता बनाते हुए रंजीत के कमजोर व्यक्तित्व को नकारती है । साथ ही फत्तेसिंह और थानसिंह जैसे पुरूषों के रौंद कर बागी तेवर अपनाती है । उसके चरित्र का यह आरोह–अवरोह भरा विकास इस बात का सूचक है कि अपने भय से मुक्त होकर वह अब निर्भीक है और अन्याय के प्रतिरोध की यात्रा पर निकल चुकी है । उसकी यात्रा में सहायक है :–

साहूकार भवानीदास की बड़ी बहू सीमा, कलावती चाची, लौंगसिरी बुआ। अपने छोटे–छोटे वृत्तों में रहकर भी ये पात्र अपनी छाप छोड़ते हैं ।' स्त्रियों के समांतर ही पुरूष पात्रों की अपनी दुनिया है। उनके अपने मोह हैं, संघर्ष हैं। रूढ़िबद्ध मानसिकता के चलते कुछ पात्र अपनी भ्रष्ट सत्ता को बनाए रखने के लिए कुछ भी करने को तैयार है । फत्तेसिंह और थानसिंह ऐसे ही पात्र हैं । रंजीत पर लेखिका का फोकस सबसे अधिक है। उसके चरित्र में भी घात–प्रतिघात दिखाई देते हैं । उसका चरित्र दुर्बल है। प्रधानी के लालच में वह किसी भी हद तक जाने को तैयार हैं। सारंग और श्रीधर के प्रणय संबंधों से वह बैचेन है, ईर्ष्यालु हो जाता है। सारंग के बदले हुए रूप से वह आक्रांत भी है, प्रभावित भी। अंततः वह घर की ओर या यूं कहें कि सारंग की ओर लौटता है। भंवर और बाबा गजाधर सिंह जैसे मानवीय और सहृदय पात्र भी इसी क्रम में आते है।।

शिल्प–डॉ. राजेन्द्र राय के शब्दों में यह 'स्पोकन लैंग्वेज' का उपन्यास है ।8 स्थानीय देशज शब्दों व हरियाणवी के समन्वय ने इस उपन्यास को ताकत दी है। लोककथा व लोकगीतोंका प्रयोग भी स्त्री–विमर्श के संदर्भ में स्त्री की स्थिति और नियति को व्यक्त करता है। सारंग और श्रीधर के प्रणय–प्रसंग में सुंदर बिंबात्मकता की सृष्टि लेखिका ने की है। अंत में इतना ही कि स्त्री–विमर्श को फैशन की तरह लेकर उच्च जातियों के सवर्ण हिंदू समाज के घरों में कैद कामिनी स्त्री, शहरी मध्यवर्ग की भोग्या और–उपेक्षिता स्त्री और धनाड्‌य व्यापारी वर्गों की 'गहने बनवाओं–गहने तुड़वाओ–फिर बनवाओ' की मानसिकता से ग्रस्त अवकाश भोगी स्त्री की मनगढंत छबि के विपरीत मैत्रेयी ने पश्चिमी उत्तरप्रदेश की गूजर व जाट जाति की स्त्रियों की श्रमजीवी साहसिकता, बिंदासपन और स्वायत्त होने की जिजीविषा को केन्द्र में रखकर यह अद्‌भुत उपन्यास रचा है। अपने शीर्षक को सार्थक करता यह उपन्यास गांव की स्त्रियों के मिट्‌टी के लौंदों – से व्यक्तित्व के चौतरफा परिवर्तन के चाक पर बनते–बिगड़ते नये रूपाकार को व्यक्त करता है । पिछले तीन दशकों के अंदर हिंदी भाषी क्षेत्रों में उठती स्त्री–मुक्ति की समस्या और उससे जुड़े आंदोलनों की वैचारिक अनुगूंजें इस उपन्यास में ध्वनित होती हैं। पितृ सत्तात्मक संस्कारों पर आधृत समाज किस प्रकार स्त्री की सोच को, उसकी स्वायत्तता को अपाहिज बना देता है और कितनी कोशिशे करने के बाद सारंग जैसी अदम्य संकल्पवान स्त्री मुक्त होती है । यह एक आदर्श लेखिका ने प्रस्तुत किया है तथा एक दृष्टि भी प्रदान की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वागर्थ – पृ. 108 (अंक–31) भारतीय भाषा परिषद प्रकाशन, कलकत्ता 2. चाक – पृ. 17–18 राजकमल प्रकाशन – दिल्ली 3. वही – पृ. 21 राजकमल प्रकाशन – दिल्ली 4. वही – पृ. 14 राजकमल प्रकाशन – दिल्ली 5. वही – पृ. 16 राजकमल प्रकाशन – दिल्ली 6. वही – पृ. 93 राजकमल प्रकाशन – दिल्ली 7. हंस – पृ. 90 (जुलाई–98) अक्षर प्रकाशन – नई दिल्ली 8. पहल– वही पृ. 235 (अंक–57) आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा